भारतीय निर्यात-आयात बैंक

35 वां

स्थापना दिवस

वार्षिक व्याख्यान २०२०

वित्तीय वैश्वीकरण और अंतरराष्ट्रीय वित्तीय बाज़ार

प्रो. हेलेन रे

लंदन बिज़नेस स्कूल

सीईपीआर और एनबीईआर

एक्ज़िम बैंक

EXIM BANK

हमें फॉलो करें

वित्तीय वैश्वीकरण और अंतरराष्ट्रीय वित्तीय बाज़ार

प्रो. हेलेन रे
लंदन बिज़नेस स्कूल सीईपीआर और एनबीईआर

सारांश

इस व्याख्यान में हम वैश्विक वित्तीय चक्र की विशेषताओं पर बात करेंगे। यह वैश्विक वित्तीय चक्र क्या है? दरअसल, यह दुनिया वित्तीय आवश्यकताओं से परस्पर जुड़ी हुई है। इसलिए विश्व अर्थव्यवस्था में पूँजी प्रवाह, जोखिम युक्त आस्तियों और ऋण वृद्धि में आने वाले सामान्य उतार-चढ़ावों को वैश्विक वित्तीय चक्र के रूप में परिभाषित किया गया है। यूएस फेडरल रिज़र्व की मौद्रिक नीति इस वैश्विक वित्तीय चक्र के महत्त्वपूर्ण कारकों में से एक है, जो वैश्विक वित्तीय परिदृश्य को प्रभावित करती है। इसमें अंतरराष्ट्रीय मौद्रिक और वित्तीय व्यवस्था में अमेरिका की केंद्रीय भूमिका और अंतरराष्ट्रीय बैंकिंग, ट्रेड इनवॉयसिंग तथा आस्ति बाज़ारों में डॉलर का प्रभुत्व परिलक्षित होता है। किन्तु वैश्विक अर्थव्यवस्था और वैश्विक व्यापार में अमेरिका का योगदान अब तुलनात्मक रूप से घट रहा है। अब हमारे सामने एक बहुध्रुवीय अंतरराष्ट्रीय मौद्रिक और वित्तीय व्यवस्था उभर रही है, जिसमें यूरो क्षेत्र या चीन बड़ी भूमिका में हो सकते हैं। डिजिटल मुद्राओं का आना भी अंतरराष्ट्रीय मौद्रिक व्यवस्था को प्रभावित कर सकता है और विश्व के आर्थिक-राजनीतिक परिदृश्य को बदल सकता है।

*मुंबई 2020. यह व्याख्यान पियरे ओलिविअर गॉरिन्शास, सिल्विया मिरांडा-एग्रीपिनो, एवजेनिया पसारी, रिचर्ड पोर्तेस, मैक्सिम सौज़ेट के संयुक्त कार्य पर तैयार किया गया है। यह व्याख्यान किसी भी रूप में फ्रेंच मैक्रोप्रूडेंशियल अथॉरिटी के विचारों को अभिव्यक्त नहीं करता है।

**हेलेन रे, hreylondon.edu, www.Helenerey.eu

परिचय

मैं गौरवान्वित हूं कि भारतीय निर्यात–आयात बैंक के 35वें स्थापना दिवस वार्षिक व्याख्यान के लिए मुझे आमंत्रित किया गया। यह मेरा सौभाग्य है। लेकिन यह मेरे लिए किसी चुनौती से कम भी नहीं है, क्योंकि मुझसे पहले बड़े–बड़े अर्थशास्त्री इस मंच से महत्त्वपूर्ण आर्थिक पहलुओं पर बात करते रहे हैं। मैं आज अंतरराष्ट्रीय वित्त और विभिन्न अर्थव्यवस्थाओं के लिए वैश्वीकरण के महत्त्व पर बात करूंगी। यह ऐसा विषय है, जिस पर मैं कई वर्षों से शोधरत हूँ और मैं समझती हूं कि यह भारत के लिए भी बहुत प्रासंगिक है।

एक अर्थशास्त्री हुए हैं कीन्ज़। 1920 में इनका एक शोध पत्र छपा था। शीर्षक था– 'इकनॉमिक कन्सीक्वेंसेज़ ऑफ पीस' ('शांति के आर्थिक परिणाम')। इस शोध पत्र में उन्होंने व्यापार और वित्तीय प्रवाहों में अंतरराष्ट्रीय एकीकरण के लाभ बताए हैं। उन्होंने दो दृश्य दिखाए हैं। एक, विश्व युद्ध से पहले का और दूसरा, युद्ध और महामंदी के बाद का। पहले दृश्य में वह बताते हैं कि विश्व युद्ध से पहले किस तरह ''लंदन का बाशिंदा हाथ में चाय की प्याली थामे, दुनिया की कोई भी वस्तु फोन पर ही ऑर्डर कर सकता था और घर बैठे ही उसे पा सकता था। इतना ही नहीं, वह उसी फोन के जरिए दुनिया के किसी भी हिस्से में प्राकृतिक संसाधनों से लेकर नए उद्यमों तक में निवेश कर सकता था; और बिना किसी अतिरिक्त परिश्रम या परेशानी के अपने संभावित लाभों के बारे में जान सकता था; या अपनी संपत्ति को और अधिक सुरक्षित बनाने के लिए, उस सूचना के आधार पर किसी भी महाद्वीप के किसी भी नगर के धनवान लोगों के साथ मिलकर निवेश कर सकता था।'' (कीन्ज़, 1920, पेज 11)

फिर दुनिया ने विश्व युद्ध का दौर देखा। युद्ध के दौरान कुछ बड़े झटके लगे। विश्व को महामंदी का सामना करना पड़ा। अंततोगत्वा वित्तीय उदारता का बढ़ना थम–सा गया। 2008 के वित्तीय संकट से इस चलन में थोड़ी कमी आने के बावजूद उभरती अर्थव्यवस्थाएं और उन्नत देश, दोनों ने ही विदेशों में बड़ी संख्या में आस्तियों में वृद्धि देखी। हालाँकि ब्रेक्ज़िट की वजह से यूरोप में कुछ अंतरराष्ट्रीय वित्तीय संपर्क सूत्रों पर असर पड़ सकता है। इस वित्तीय एकीकरण को वार्षिक जीडीपी के हिस्से के रूप में विदेशों में वित्तीय आस्तियों और देयताओं की वृद्धि के परिप्रेक्ष्य में देखा जा सकता है। ध्यान देने वाली बात यह है कि उन्नत अर्थव्यवस्थों के संदर्भ में यह एकीकरण 1980 में जीडीपी के करीब 70% था जो बढ़कर 2007 के आर्थिक संकट से ठीक पहले 440% तक हो गया था। वहीं, इसी अवधि के दौरान उभरते बाज़ारों के संदर्भ में यह आंकड़ा 35% से बढ़कर 70% हो गया था। भारत की बात करें तो 2018 में यह आंकड़ा 61.3% (सकल विदेशी आस्तियां जीडीपी की 20.5% और सकल विदेशी देयताएं 40.8%) रहा था। डेरिवेटिव्स और आस्ति आधारित मॉर्टगेज प्रतिभूतियों के अंतरराष्ट्रीय स्तर पर व्यापार के चलते इन अंतरदेशीय आस्तियों की संख्या भी बढ़ी है। इसलिए विशेष रूप से उभरते बाज़ारों पर युद्ध और मंदी जैसे झटकों का क्या असर पड़ता है, इसे समझने के लिए इस बात को समझना महत्त्वूर्ण हो जाता है कि वित्तीय वैश्वीकरण, अंतरराष्ट्रीय और घरेलू वित्तीय बाज़ारों को किस प्रकार प्रभावित करता है। इस विश्लेषण में आज मैं मूलतः अंतरराष्ट्रीय मौद्रिक और

वित्तीय व्यवस्था में अमेरिका और इसकी मुद्रा– डॉलर की भूमिका पर बात करूंगी।

अर्थशास्त्र में एक सिद्धांत है। हेजमॉनिक स्टैबिलिटी का सिद्धांत– इसे प्रभुत्ववादी स्थिरता का सिद्धांत कहा जा सकता है। इसके मुताबिक, वैश्विक अर्थव्यवस्था में स्थिरता में उस देश की अहम भूमिका होती है, जो अंतरराष्ट्रीय मौद्रिक और वित्तीय व्यवस्था के केंद्र में होता है। अर्थशास्त्री किंडलबर्गर ने 1981 में लिखा था, ''वैश्विक अर्थव्यवस्था में स्थिरता लाने के लिए, किसी स्टैबलाइजर (स्थायित्वदाता) की जरूरत होती है। यह स्टैबलाइजर वह देश होगा, जो ऐसे समय में, जब मौद्रिक व्यवस्था में हलचल मची हो, तब बाज़ार में तरलता (लिक्विडिटी) बनाने के लिए डिस्ट्रेस माल की बिक्री के लिए बाज़ार और रीडिस्काउंट मैकेनिज्म उपलब्ध कराएगा और मंदी में अगर पूँजी प्रवाह नहीं भी बढ़ाएगा तो कम से कम उसमें तेजी तो अवश्य लाएगा।'' जब वैश्विक अर्थव्यवस्था पर संकट के बादल मंडरा रहे हों, तो ऐसे में यह देश आयातक के रूप में अंतिम आश्रय स्थल हो सकता है। क्योंकि इस देश के पास वह क्षमता होगी, जो शेष विश्व से उधार ले सकता है और एक किस्म की ऐसी देयता जारी करता है, जिसकी मांग हमेशा रहती है। आर्थिक एजेंट विशेष रूप से संकट काल में किसी सुरक्षित मुद्रा की मांग करते हैं और यह सुरक्षित मुद्रा जारी करने वाला देश तरलता प्रदान करता है, जो विशेष रूप से संकट के समय अंतरराष्ट्रीय वित्तीय व्यवस्था के सुचारू संचालन के लिए ज़रूरी तत्त्व होती है। इसलिए इसमें हैरानी नहीं होनी चाहिए कि जब–जब सत्ता में बड़े परिवर्तन हुए हैं, तब–तब आर्थिक स्थिरता पर खतरा मंडराया है– फिर चाहे वह 1930 के दशक का परिवर्तन रहा हो या वह दौर, जब यूके का आर्थिक प्रभुत्व कम हो रहा था और अमेरिका पूरी तरह से स्थापित भी नहीं हुआ था–ऐसे समय में, सुरक्षित मुद्रा का प्रभुत्व दांव पर लगने से बड़े पोर्टफोलियो परिवर्तन भी हुए थे। हालाँकि, प्रभुत्ववादी आर्थिक नेतृत्व कभी–कभी निराशा का कारण भी बना है।

1944 में ब्रेटन वुड्स कॉन्फ्रेंस में एक नई अंतरराष्ट्रीय मौद्रिक व्यवस्था ने आकार लिया था और इस व्यवस्था के केंद्र में था अमेरिका। अमेरिका की मजबूती से फ्रांस में कुछ तीखी प्रतिक्रियाएं भी देखने को मिली थी। 4 फरवरी, 1965 को फ्रांस के पूर्व राष्ट्रपति जनरल डी गाउले ने एक प्रेस कॉन्फ्रेंस में कहा ''कई राष्ट्र सिद्धांततः यह स्वीकार करते हैं कि यदि अमेरिका का भुगतान संतुलन कम करने की जरूरत हो तो सोने के बराबर डॉलर देकर इसे कम किया जा सकता है। इसका अर्थ है कि अमेरिका मुक्त रूप से विदेशी ऋण जारी कर सकता है। वस्तुतः, जब अमेरिका किसी का देनदार होता है तो वह हिस्सों में ही सही, लेकिन सोने के बजाय डॉलर में ही भुगतान कर सकता है, जो वह खुद जारी कर सकता है, जिसका मूल्य वास्तविक है, जिसे अर्जित किया जाना है, और जिसे बिना जोखिम और कुछ हिस्सा छोड़े बिना किसी को हस्तांतरित नहीं किया जा सकता है। तो अमेरिका के पास यह जो एकपक्षीय सुविधा है, इसका तात्पर्य यह है कि डॉलर अंतरराष्ट्रीय विनिमय का तटस्थ माध्यम नहीं है, क्योंकि यह किसी एक राष्ट्र के लिए ऋण जारी करने का माध्यम है।'' इसके कुछ ही दिन बाद 1965 में ही 16 फरवरी को फ्रांस के वित्त मंत्री वालरे गिस्कार्ड डी'एस्टेन्ग ने भी डी गाउले की ही बात दोहराई और कहा कि आरक्षित मुद्रा जारी करने वाला देश ''हद से ज्यादा ही विशेषाधिकार'' ले रहा

[1] गौरिन्शास, रे और सॉज़ेट के कार्य का अनुवाद (2019)

है। वैश्विक शक्तियों और अंतरराष्ट्रीय मौद्रिक व्यवस्था में समानांतर देशों के बीच यह प्रतिद्वंद्व इन समानांतर देशों के अध्ययन को दिलचस्प बनाता है। जैसे–जैसे विश्व का आर्थिक केंद्र एशिया की ओर बढ़ रहा है, वैसे–वैसे चीन एक भू–राजनीतिक शक्ति के रूप में उभर रहा है। यह ऐसा समय है, जब डॉलर के प्रभुत्व को चुनौती दी जा सकती है। निजी या सार्वजनिक डिजिटल मुद्राओं के उभरने से भी भुगतान व्यवस्था में ऐसे परिवर्तन आ सकते हैं, जो पहले कभी नहीं देखे गए हैं।

मैं इस व्याख्यान में सबसे पहले डॉलर के प्रभुत्व के विभिन्न आयामों पर बात करूंगी। इसके बाद हम वैश्विक वित्तीय चक्र (रे 2013) और घरेलू वित्तीय व्यवस्थाओं और उनकी स्थिरता पर इसके प्रभावों की बात करेंगे। और आखिर में हम वर्तमान मौद्रिक व्यवस्था की स्थिरता पर चर्चा करेंगे, क्योंकि किसी प्रभुत्ववादी व्यवस्था में अंतर्निहित असमानता भी वित्तीय अस्थिरता ला सकती है, जो अंततः उसके पतन का कारण बन सकती है। इसी को मैं 'न्यू ट्रिफिन डिलेमा' के रूप में वर्णित करूंगी। जब व्यवस्था एकध्रुवीय होने की ओर अग्रसर है तो चीन जैसी उभरती महाशक्तियों या डिजिटल अथवा क्रिप्टो मुद्राएं जारी करने वाली नई– संभावित निजी शक्तियों से मिलने वाली चुनौतियों पर चर्चा करना अहम हो जाता है।

मैं समझती हूं कि देश अपने मौद्रिक और वित्तीय प्रभावों के अंतर्गत आने वाले देशों के नेटवर्क के विस्तार के लिए परिष्कृत और हाईटेक भुगतान तकनीकों का इस्तेमाल करते हुए प्रतिस्पर्धा कर सकते हैं। यह एक नई तरह का भू–राजनीतिक खेल हो सकता है।

I. अंतरराष्ट्रीय मौद्रिक व्यवस्था और डॉलर का प्रभुत्व

अंतरराष्ट्रीय स्तर पर किसी एक मुद्रा का प्रभुत्व होता है। किस मुद्रा का कितना प्रभुत्व है, यह इससे तय होता है कि अंतरराष्ट्रीय व्यापार में किसी मुद्रा का इस्तेमाल, उस मुद्रा को जारी करने वाले देश के अलावा और कितने देश कर रहे हैं। प्रभुत्व वाली इस मुद्रा की भूमिका बहुआयामी होती है और इसमें धन के तीन फंक्शन शामिल होते हैं: विनिमय माध्यम (मीडियम ऑफ एक्सचेंज), मूल्य संचय (स्टोर ऑफ वैल्यू) और मूल्य मापक ईकाई (यूनिट ऑफ अकाउंट)। किसी मुद्रा के अंतरराष्ट्रीय इस्तेमाल में उसकी अलग–अलग भूमिकाएं सामने आती हैं। किसी मुद्रा के अंतरराष्ट्रीय इस्तेमाल में उसकी विभिन्न भूमिकाओं के बीच कई सहक्रियाएं होती हैं, जिनसे दूसरी इन्कम्बेंट अंतरराष्ट्रीय मुद्राओं को हटाना मुश्किल हो जाता है। मुद्रा के विनिमय माध्यम में भरोसा होना जरूरी है, ताकि मुद्रा की साख और मूल्य में स्थिरता लाई जा सके। आज के समय में, किसी वैध मुद्रा के मूल्य में यह स्थिरता के लिए उस मुद्रा के पीछे किसी विश्वसनीय का समर्थन होना जरूरी है। यह सामान्य मनोवृत्ति है कि अपनी मुद्रा में स्थिरता आते देख लोगों को अपनी क्रय शक्ति आंकना और व्यापार में पैसा लगाना अच्छा लगता है। जितने अधिक लोग किसी मुद्रा का इस्तेमाल करते हैं, उतने ही अधिक अन्य एजेंट उस मुद्रा का इस्तेमाल करना चाहते हैं, क्योंकि विनिमय प्रणाली में एक बाह्य नेटवर्क होता हैः मुद्राओं में डॉलर वैसे ही है, जैसे भाषाओं में अंग्रेजी। इसके अलावा, निवेशक उस मुद्रा को संचित करना चाहते हैं, जिस

मुद्रा में उन्हें ज्यादा से ज्यादा ट्रांजैक्शन करने पड़ते हैं। इसलिए किसी मुद्रा में बॉन्ड बाज़ारों और आस्ति बाज़ारों के विकसित होने तथा अंतरराष्ट्रीय विनिमय में उस मुद्रा के इस्तेमाल के बीच एक पूरक संबंध होता है। और यह संबंध बहुत मजबूत होता है। अब ऐसी स्थिति में यह होगा कि हर देश का केंद्रीय बैंक अपनी-अपनी विनिमय दरों और अंतरराष्ट्रीय व्यापार एवं निवेश के लिए विनिमय दर के जोखिम को कम करने के लिए अंतरराष्ट्रीय मुद्रा को स्थिर बनाए रखने का प्रयास करेगा (इज़ेत्क्सकी, रीनहार्ट और रोजोफ (2018) देखें)। ऐसा करने के लिए वे देश डॉलर का संचयन करेंगे यानी डॉलर के अपने आरक्षित मुद्रा भंडार को बढ़ाएंगे और किसी भी तरह की उतार-चढ़ाव की स्थिति में उस आरक्षित डॉलर का इस्तेमाल करेंगे। अंतरराष्ट्रीयकरण के इन तमाम उपायों के चलते डॉलर दूसरी मुद्राओं की तुलना में कहीं आगे है। इस बात को चार्ट 1 से स्पष्ट रूप से समझा जा सकता है। रेन्मिन्बी को अंतरराष्ट्रीय बाज़ारों में बमुश्किल ही स्वीकारा जाता है, जबकि यूरो दूसरे स्थान पर है। डॉलर के मुकाबले यूरो के इस्तेमाल में भी काफी बड़ा अंतर है। इस प्रकार, ब्रेटन वुड्स सिस्टम में विभिन्न मुद्राओं के लिए एक ही विनिमय दर निर्धारित की गई और डॉलर की कीमत को सोने की कीमत से जोड़ा गया और डॉलर का प्रभुत्व कायम हो गया। 1973 के बाद के लचीली (फ्लेक्सिबल) विनिमय दरों के दौर में भी डॉलर का प्रभुत्व कायम रहा।

चार्ट 1 डॉलर का प्रभुत्व: स्रोत: यूरो की अंतरराष्ट्रीय भूमिका के संबंध में ईसीबी रिपोर्ट (2018)

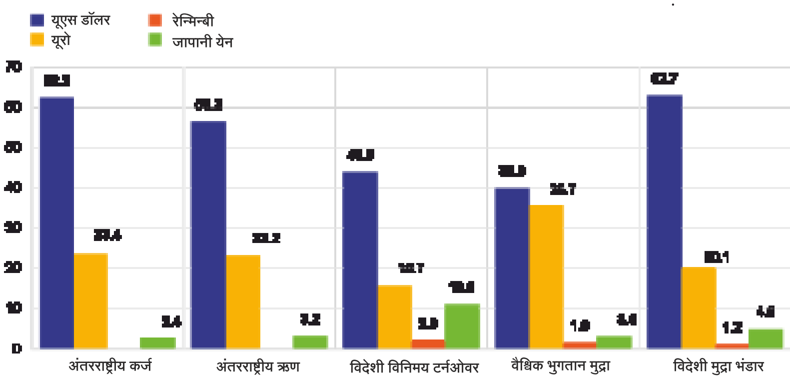

(Figures in percentage)

अंतरराष्ट्रीय व्यवस्था के ढांचे को समझने के लिए महत्त्वपूर्ण तथ्यों में से एक यह है कि प्रभुत्व वाली मुद्रा को जारी करने वाला देश शेष विश्व को आरक्षित आस्तियां प्रदान करता है। इसलिए, गौरिन्शास और रे (2007बी) (देसपेरेस एवं अन्य(1966)) में दिखाए अनुसार, अमेरिका की बाह्य बैलेंस शीट बहुत विशिष्ट है: यह विश्व बैंकर है, इसके पास जोखिम वाली बड़ी आस्तियां हैं और जोखिम-मुक्त लिक्विड डॉलर देयताएं काफी कम हैं, जिनकी शेष विश्व से भारी मांग रहती है। आप अमेरिका को बीमाकर्ता के रूप में भी देख सकते हैं, क्योंकि अमेरिका की ट्रेजरी बिल जैसी देयताओं का मूल्य और

दुनिया के दूसरे देशों के पास जमा अमेरिका के सरकारी बॉन्डों का मूल्य खराब समय में बढ़ता है, और इस प्रकार उन बॉन्डों को रखने वालों का एक तरह से बीमा हो जाता है। यह बीमा ट्रांसफर लेमैन ब्रदर्स के एकाएक गिरने के बाद आए वैश्विक संकट के समय अमेरिका के जीडीपी के लगभग 13% के साथ काफी बड़ा था। (गौरिन्शास एवं अन्य (2018) देखें)।

आरक्षित मुद्रा जारी करने के कई तरह के लाभ होते हैं। जैसे– अंतरराष्ट्रीय बाज़ारों में यूएस डॉलर में जारी किया गया निजी कर्ज (मैगिअरी एवं अन्य (2018) देखें) और यूएस डॉलर में इन्वॉइस किया गया व्यापार का बड़ा हिस्सा, उस केंद्र देश के व्यापार की शर्तों में स्थिरता लाते हैं। चार्ट 2 में यूएस डॉलर में इन्वॉइस किए गए निर्यात–आयात दिखाए गए हैं। यह लैटिन अमेरिका और एशिया में विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण है। जहां तक इन्वॉइस का सवाल है तो भारत सबसे अधिक डॉलराइज देश है।

चार्ट 2 :डॉलर में इन्वॉइस किए गए निर्यातों और आयातों का हिस्सा। 2 की वैल्यू का अर्थ है कि निर्यातों का 100% और आयातों का 100% डॉलर में ही इन्वॉइस हैं। यानी सभी निर्यात–आयात डॉलर में ही इन्वॉइस किए गए हैं। स्रोतः (गौरिन्शास एवं अन्य (2019) । डाटा गोपीनाथ (2015) से।

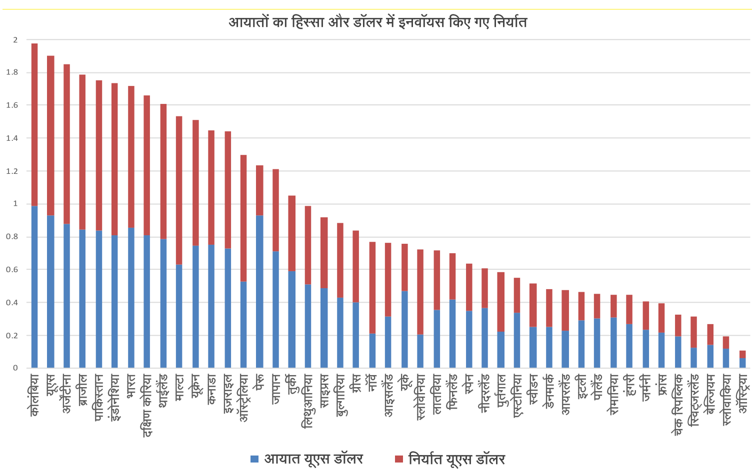

आरक्षित मुद्रा फेडरल रिजर्व की मौद्रिक नीति के अनुरूप भी जारी की जाती है, जो विशेष रूप से, वैश्विक वित्तीय संस्थाओं की बैलेंस शीट और उनकी जोखिम वहन क्षमता को प्रभावित करते हुए वैश्विक वित्तीय चक्र के लिए एक राह तय कर देती है। मिरांडा–एग्रिपिनो और रे (2015) ने विशेष रूप से बताया है कि यूएस फेडरल रिजर्व द्वारा मौद्रिक नीति को कठोर बनाने से अंतरराष्ट्रीय क्रेडिट फ्लो संकुचित होता है और न सिर्फ अमेरिकी ब्रोकर डीलरों, बल्कि यूरोपीय वैश्विक बैंकों के लेवरेज में भी गिरावट आती है। वैश्विक अर्थव्यवस्था में डॉलर की विनिमय दर ही प्रमुख सापेक्ष कीमत (रिलेटिव प्राइस) है। इसके अतिरिक्त, वर्ल्ड बैंकर बैलेंस शीट का अर्थ बैंकर मध्यस्थता मार्जिन आय से है, जो

यूएस के निवल विदेशी आस्ति स्थिति पर अतिरिक्त रिटर्न (1952 से वास्तविक टर्म्स में लगभग 2% प्रति वर्ष) को दर्शाती है। इस प्रकार अंतरराष्ट्रीय समायोजन की प्रक्रिया आसान होती है। यह कुछ ऐसा है, जिसे गौरिन्शास और रे (2007बी) ने 1960 के गॉलिस्ट के अंलकारिक संदर्भ में 'अत्यधिक विशेषाधिकार' की संज्ञा दी है।

II. अत्यधिक विशेषाधिकार

चार्ट 3 विश्व बैंकर (अमेरिका) की तुलना में शेष विश्व के निवल जोखिम (इक्विटी और एफडीआई) और निवल सुरक्षित (बॉन्ड और बैंक ऋण) की स्थिति को दर्शाता है। प्रमुख आरक्षित मुद्रा जारीकर्ता के रूप में अमेरिका स्पष्ट रूप से 'लॉन्ग फ्रंट पर रिस्की और शॉर्ट फ्रंट पर सेफ' है। अमेरिका ही है जो शेष विश्व को बड़ी संख्या में लगातार सुरक्षित आस्तियां प्रदान करता है। इसके अतिरिक्त, जहां अन्य सभी देशों की विदेशी देयताएं (ऋण) डॉलर में हैं, लेकिन अमेरिका की विदेशी आस्तियां बड़ी संख्या में विदेशी मुद्रा में हैं। आस्तियों के प्रकार और मुद्रा के इस अंतर से पैदा हुई यह असंतुलित बैलेंस शीट अमेरिका को मध्यस्थता (इंटरमीडिएशन) मार्जिन प्रदान करती है। अर्थात अमेरिका जो ब्याज चुकाता है, उससे अधिक कमाता है। इस प्रकार अमेरिका अपनी नेट विदेशी आस्ति स्थिति पर लगभग 2% का अतिरिक्त लाभ कमाता है।

चार्ट 3: विश्व बैंकर एक्सटर्नल बैलेंस शीट। नीचे दिया गया डाटा 'लेन और मिलेसि-फेरेटी (2018)' से है और इसमें वार्षिक आधार पर 1970-2015 का डाटा कवर किया गया है। नेट जोखिमपूर्ण स्थिति =पोर्टफोलियो इक्विटी आस्तियां + एफडीआई आस्तियां - (पोर्टफोलियो इक्विटी देयताएं + एफडीआई देयताएं)। नेट सुरक्षित स्थिति = आरक्षित आस्तियां +कर्ज आस्तियां - कर्ज देयताएं। कर्ज में पोर्टफोलियो कर्ज और अन्य निवेश शामिल हैं। दोनों स्थितियां सभी देशों के प्रत्येक समूह, यूएस और शेष विश्व के लिए समेकित की गई हैं और उसे उस वर्ष में उस समूह की जीडीपी से नॉर्मलाइज किया गया है। स्रोतः (गौरिन्शास एवं अन्य(2019)।

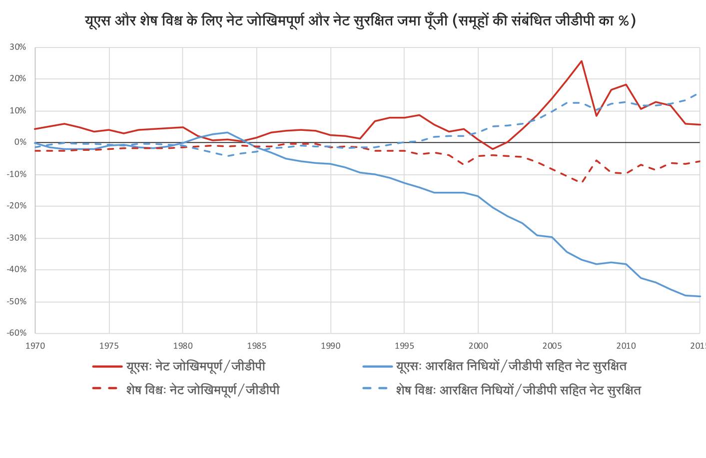

III. वैश्विक वित्तीय चक्र

i) विशिष्टताएं

वैश्विक वित्तीय चक्र अंतरराष्ट्रीय व्यापार, अंतरराष्ट्रीय बैंकिंग और आस्ति बाजारों से मिलकर बनता है। चूंकि इनमें डॉलर का प्रभुत्व है, इसलिए डॉलर में आने वाले उतार–चढ़ाव से ये सब प्रभावित होते हैं। ये आर्थिक झटके हैं और आर्थिक भाषा में इसी को झटकों का अंतरराष्ट्रीय प्रसार कहा जाता है, जिससे मैक्रो–इकनॉमिक नीतियां भी प्रभावित होती हैं। 2013 में जैक्सन होल सिम्पोसियम के लिए लिखे एक शोधपत्र में, मैंने वैश्विक वित्तीय चक्र को कुछ इस तरह परिभाषित किया था– विभिन्न देशों में सकल पूँजीगत प्रवाहों, ऋण वृद्धि, जोखिमपूर्ण आस्ति मूल्यों और लेवरेज का साथ–साथ चलना (को–मूवमेंट) ही वैश्विक वित्तीय चक्र है।

चार्ट 4 पूँजी आगमन (देशों की देयताएं) के सहसंबंधों के स्वरूप को दर्शाता है, जो 1990 की पहली तिमाही से 2017 की चौथी तिमाही के दौरान विभिन्न भौगोलिक क्षेत्रों (उत्तर अमेरिका, यूरोप, लैटिन अमेरिका, एशिया, उभरता एशिया, अफ्रीका) में भुगतान संतुलन की पारंपरिक श्रेणियों एफडीआई, पोर्टफोलियो (कर्ज और इक्विटी) और ऋण 2 के आस्ति में बंटा है। हीटमैप रंग तमाम क्षेत्रों में पूँजी प्रवाहों और उनके प्रकार (धनात्मक रहने पर हरा, अन्यथा लाल) को दर्शाते हैं।

चार्ट 4: आस्ति वर्गों द्वारा सकल पूँजी आगमन और भौगोलिक क्षेत्र। डाटा 1990 की पहली तिमाही से 2017 की चौथी तिमाही तक तिमाही आधार पर हैं और आईएमएफ बीओपीएस से लिए गए हैं।

Liabilities	Pfolio N. Am	Pfolio Asia	Pfolio EU	Pfolio Africa	Pfolio LatAm	Pfolio Em. As	FDI N. Am	FDI Asia	FDI EU	FDI Africa	FDI LatAm	FDI Em. As	Cred N. Am	Cred Asia	Cred EU	Cred Africa	Cred LatAm	Cred Em. As
Pfolio N. Am	1.0																	
Pfolio Asia	0.8	1.0																
Pfolio EU	0.7	0.5	1.0															
Pfolio Africa	0.6	0.6	0.4	1.0														
Pfolio LatAm	0.5	0.5	0.3	0.6	1.0													
Pfolio Em. As	0.7	0.7	0.5	0.7	0.7	1.0												
FDI N. Am	0.5	0.4	0.5	0.5	0.4	0.5	1.0											
FDI Asia	0.6	0.5	0.4	0.6	0.6	0.7	0.7	1.0										
FDI EU	0.6	0.4	0.5	0.3	0.4	0.3	0.6	0.7	1.0									
FDI Africa	0.4	0.5	0.2	0.5	0.6	0.6	0.6	0.9	0.6	1.0								
FDI LatAm	0.5	0.5	0.4	0.5	0.6	0.6	0.7	0.9	0.7	0.8	1.0							
FDI Em. As	0.5	0.5	0.4	0.5	0.6	0.6	0.6	1.0	0.7	0.9	0.9	1.0						
Credit N. Am	0.3	0.2	0.4	0.1	0.1	0.2	0.2	0.0	0.2	0.0	0.1	0.0	1.0					
Credit Asia	0.5	0.4	0.3	0.4	0.5	0.5	0.3	0.5	0.4	0.4	0.4	0.5	0.4	1.0				
Credit EU	0.4	0.2	0.4	0.1	0.1	0.2	0.2	0.0	0.3	0.0	0.1	[illegible]	0.6	0.4	1.0			
Credit Africa	0.3	0.3	0.3	0.4	0.5	0.5	0.6	0.7	0.4	0.6	0.7	0.7	[illegible]	0.4	0.0	1.0		
Credit LatAm	0.2	0.3	0.2	0.2	0.3	0.3	0.4	0.4	0.3	0.4	0.3	0.4	0.1	0.4	0.1	0.2	1.0	
Credit Em. As	0.4	0.5	0.3	0.4	0.5	0.5	0.1	0.4	0.2	0.4	0.3	0.4	0.2	0.7	0.2	0.2	0.3	1.0

लगभग सभी पूँजी प्रवाह एक दूसरे से और तमाम क्षेत्रों में सकारात्मक रूप से जुड़ेरहते हैं 3: दुनियाभर में सकल प्रवाहों में काफी समानता है। काल्वो एवं अन्य (1996) ने पहले ही लिखा है कि अंतरराष्ट्रीय पूँजी प्रवाहों में वैश्विक कारक बड़ी भूमिका निभाते हैं। वे लिखते हैं, ''विदेशी निवेश को प्रभावित करने

[2] तकनीकी रूप से मैं अन्य निवेश इस्तेमाल करती हूं, जिसमें बैंक ऋण और व्यापार वित्त शामिल हैं।

[3] क्रॉस बॉर्डर पूँजी आगमन में भी यही परिणाम रहे

वाले वैश्विक कारकों में एक महत्त्वपूर्ण कंपोनेंट चक्रीय कंपोनेंट होता है, जिससे पूँजी आगमन में बारंबार तेजी और मंदी आती है। वास्तविक ब्याज दर और उन्नत अर्थव्यवस्थाओं की वृद्धि दर में यह चक्र पूँजी प्रवाहों के लिए अहम भूमिका निभाता है। ग्राफ VIX4 में उतार-चढ़ाव भी पूँजी प्रवाहों से गहरे जुड़ा हुआ है। VIX को सामान्य तौर पर बाज़ार प्रॉक्सी'' फीयर गेज के रूप में देखा जाता है, जो जोखिम से विमुखता और संभावित आगामी अस्थिरता को दर्शाता है।

चार्ट 5 में 1990 की पहली तिमाही से 2017 की चौथी तिमाही के लिए VIX के साथ वैश्विक जीडीपी की तुलना में सकल ऋण आगमन को दिखाया गया है। इसमें दो समय-श्रृंखलाओं में ऋणात्मक सह-संबंध सामने आते हैं। ऋण प्रवाह अधिक अस्थिर रहे हैं और तमाम प्रवाहों के प्रोसाइक्लिकल कंटोपोनेंट में भी 2003 से 2007 के बीच के संकट के दौरान उतार-चढ़ाव आए और ये भी संकट के समय समान रूप से गिर गए। ऋण वृद्धि और लेवरेज भी VIX से ऋणात्मक रूप से संबंधित हैं। पसारी और रे (2015) बताते हैं कि बैंक ऋणवृद्धि का लेवरेज (लेवरेज जमा और ऋण के अनुपात से मापा जाता है) और VIX भी ऋणात्मक रूप से सह-संबंधित हैं।

चार्ट 5: सकल ऋण आवक (वैश्विक जीडीपी का %) और VIX। (1990 की पहली तिमाही-2017 की चौथी तिमाही)। स्रोतः आईएमएमएफ बीओपीएस और शिकागो सीएमई

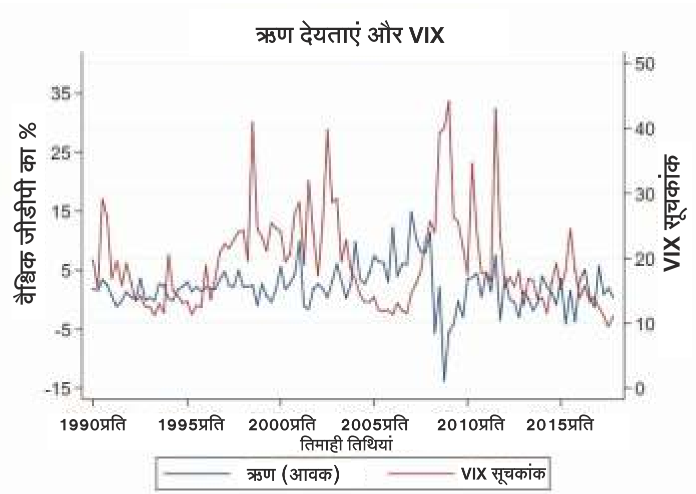

मिरांडा-एग्रिपिनो और रे (2015) ने पांच महाद्वीपों में वितरित 858 जोखिमपूर्ण आस्ति मूल्यों (स्टॉकों के मूल्य और कॉर्पोरेट बॉन्ड के मूल्य) के एक बड़े वर्ग का इस्तेमाल करते हुए दिखाया कि जोखिमपूर्ण रिटर्न का 25% से 30%उतार-चढ़ाव एक वैश्विक फैक्टर के चलते है। यह फैक्टर 1990 के शुरुआत महीनों से मध्य 1998 तक बढ़ा, जब एशियाई और रूसी संकट उभरा और उसके बाद हेज फंड दीर्घावधि पूँजी प्रबंधन (एलटीसीएम) का दिवालियापन सामने आया। 2003 के

[4] VIXशिकागो बोर्ड ऑप्शंस एक्सचेंज मार्केट वॉलैटिलिटी इंडेक्स है। यह एस एंड पी 500 इंडेक्स ऑप्शंस की अंतर्निहित अस्थिरता का उपाय है। फोर्ब्स और वरनॉक (2012) तथा ब्रूनो और शिन (2015) ने VIX में गिरावट से पूँजी प्रवाहों में आई गिरावट पर जोर दिया है।

बाद से, यह वैश्विक फैक्टर 2007 की तीसरी तिमाही में गिरावट आने तक बढ़ा। यह सब प्राइम मार्केट के गिरने के बाद हुआ और इस समय तक बैंकिंग जगत तथा वित्तीय बाज़ारों में अस्थिरता के शुरुआती संकेत भी मिलने लगे। इसके अतिरिक्त, जोखिमपूर्ण आस्ति मूल्यों में वैश्विक फैक्टर VIX से नकारात्मक रूप से सह-संबंधित हैं। दिलचस्प है कि जोखिमपूर्ण आस्ति मूल्यों में वैश्विक फैक्टर मिरांडा-एग्रीपिनो एवं अन्य (2019) 5 द्वारा आकलित पूँजी प्रवाहों में वैश्विक फैक्टर के साथ सकारात्मक रूप से सह-संबंधित हैं, जो स्वयं दुनिया भर में 20% से 25% तक पूँजी प्रवाहों में उतार-चढ़ाव दिखाता है। वित्तीय वैरिएबल्स की मात्रा और मूल्य में उल्लेखनीय सह-गतिविधियां वैश्विक वित्तीय चक्र का निर्धारण करती हैं।

ii) वैश्विक वित्तीय चक्र की उत्पत्ति

एक ब्रिटिश बैंकर और अर्थशास्त्री हुए हैं, एंड्रयू क्रोकेट। इन्होंने इन तथ्यों के अनुरूप, 2001 में एक मैकेनिज्म दिया था। उन्होंने कहा था, ''वित्तीय जगत दूसरे क्षेत्रों की तरह नहीं है। इसमें आपूर्ति से मूल्य का संबंध अल्प प्रभावी है, या यहां तक कि अप्रभावी है। सामान्यत: आपूर्ति बढ़ने से वस्तुओं के मूल्य में गिरावट आती है और लाभ मार्जिन कम होने लगता है। परिणामस्वरूप निवेश कम होने लगता है और निवेशकों द्वारा अपना पैसा निकालने की प्रवृत्ति को बढ़ावा मिलता है। इसके विपरीत वित्तीय जगत में जब ऋणों की आपूर्ति बढ़ती है तो ब्याज दर घटती है। इसके परिणामस्वरूप आस्ति मूल्य बढ़ता है और उधारकर्ताओं तथा अन्य मध्यवर्ती संस्थाओं (इंटरमीडियरीज़) की बैलेंस शीट मजबूत होती है। बढ़ते आस्ति मूल्यों से लेवरेज और ऋण के विस्तार को बढ़ावा मिलता है, जिससे अंततः ऋण वृद्धि और होती है।'' अब सवाल उठता है कि कौन-से कारक (फैक्टर) हैं, जिनसे ऋण का शुरुआती विस्तार हुआ? मिरांडा-एग्रीपिनो और रे (2015) ने अपने अध्ययन में पाया कि यूएस फेडरल रिज़र्व की मौद्रिक नीति वैश्विक वित्तीय चक्र के प्रमुख कारकों में से एक है। चूंकि डॉलर वैश्विक रूप से एक महत्त्वपूर्ण फंडिंग मुद्रा है तथा मध्यवर्ती संस्थाएं अल्पावधि ऋण के लिए डॉलर को ही प्राथमिकता देती हैं और फ्लोटिंग दर पर डॉलर में ही कर्ज लेती हैं। इसलिए नकदी प्रवाह पर अमेरिका की मौद्रिक नीति का त्वरित असर पड़ता है। दुनियाभर में डॉलर मुद्रा वाली आस्तियों या डॉलर से संबंधित आस्तियों की मौजूदगी के चलते अमेरिका की मौद्रिक नीति बैंकों, आस्ति मैनेजरों, पारिवारिक ईकाइयों, कंपनियों की नेटवर्थ और कोलैटरल के जरिए उनकी उधारी क्षमताओं को प्रभावित करती है। डॉलर लिक्विडिटी के बाहुल्य के चलते सेंटिमेंट में आने वाले उतार-चढ़ाव का अंतरराष्ट्रीय निवेशकों पर काफी असर पड़ता है। ऐसे समय में जब आर्थिक परिवेश में जोखिम नहीं रहता है (रिस्क-ऑन पीरियड), तब दुनियाभर में वित्तीय पूँजी का प्रवाह बना रहता है, इससे जोखिम वाले आस्ति मूल्य बढ़ते हैं और लेवरेज अधिक होता है। लेकिन ऐसे समय में जब आर्थिक परिवेश जोखिमपूर्ण हो, यह प्रक्रिया उल्टी हो सकती है। रे (2013), पसारी और रे (2015) तथा गेर्को और रे (2017) बताते हैं कि अमेरिका की मौद्रिक नीति VIX को उल्लेखनीय रूप से प्रभावित करती है। सामान्य रूप से देखा जाए तो, अमेरिकी मौद्रिक नीति अंतरराष्ट्रीय बाज़ारों में प्रभावी जोखिम विमुखता में आने वाले उतार-चढ़ाव के प्रमुख कारकों में से एक है (चर्चा के लिए रे (2016) और

[5] डेविस एवं अन्य (2019) भी देखें

बर्नान्के (2017) देखें)। प्रभावी जोखिम विमुखता को गहन प्राथमिकता पैरामीटर के रूप में नहीं समझा जाना चाहिए, जैसा कि विभिन्न बाजारों में मार्जिनल निवेशक समझते हैं। उदाहरण के लिए, 2003 से 2007 के बीच की अवधि के दौरान अंतरराष्ट्रीय वित्तीय बाज़ारों में वैश्विक बैंक बेहद महत्त्वपूर्ण रहे। यह ऐसा समय था, जब विनियमों में ढील दी गई थी और उन्हें बड़े लेवरेज के साथ उच्च जोखिम लेने वाली संस्था के रूप में देखा जा रहा था। इन संस्थाओं की जोखिम विमुखता कम थी और परिणामतः चूंकि वे अंतरराष्ट्रीय बाज़ार में प्रमुख थे, अतः जोखिम विमुखता अंतरराष्ट्रीय स्तर पर ही कम थी।

iii) वैश्विक वित्तीय चक्र और घरेलू वित्तीय व्यवस्था

वैश्विक वित्तीय चक्र, घरेलू चक्रीय परिस्थितियों से बेअसर रहते हुए घरेलू मध्यवर्ती संस्थाओं, बैंकों या गैर–बैंकों की वित्तीय स्थिति को या तो नरम करता है या सख्त बनाता है। ऐसा उन देशों के साथ होता है, जहां डॉलर की तुलना में स्थायी या लचीली (फ्लेक्सिबल) विनिमय दर व्यवस्था होती है। लचीली विनिमय दर से हासिल किया गया अतिरिक्त स्वातंत्र्य, घरेलू मैक्रो–इकनॉमी पर विदेशी वित्तीय स्थितियों के प्रभावों को न्यूट्रलाइज करने के लिए पर्याप्त नहीं है। अतः बड़े पूँजी प्रवाहों वाले परिवेश मेंमंडेलिन ट्रिलेमा एक डिलेमा (रे (2013)) में बदल जाता है। फ्लोटिंग विनिमय दर और मुद्रास्फीति लक्ष्य तय करना घरेलू अर्थव्यवस्था को बचाने और मौद्रिक नीति स्वातंत्र्य के लिए काफी नहीं है। लेकिन इसका यह मतलब भी नहीं है कि लचीली विनिमय दरें निरुद्देश्य हैं। लचीली विनिमय दरें बड़े मैक्रो–इकनॉमिक झटकों के बाद देशों के विदेशी ऋणों के समायोजन में मददगार होती हैं। ऑब्सफेल्ड और टेलर (2017) में भी इस बात पर जोर दिया गया है। लेकिन इसका यह मतलब भी है कि लचीली विनिमय दरें अर्थव्यवस्थाओं को वैश्विक वित्तीय स्थितियों से अलग नहीं कर सकतीं।

वैश्विक वित्तीय चक्र, जोखिमयुक्त आस्तियों और जोखिम मुक्त आस्तियों को भी प्रभावित करता है, जो न केवल बैंकिंग क्षेत्र में, बल्कि गैर–बैंकिंग क्षेत्र में भी व्यापक रूप से इस्तेमाल होती हैं। यह ऋण और पोर्टफोलियो प्रवाहों की प्रोसाइक्लिकैलिटी में योगदान देता है और वित्तीय संकट के उभरने में इनके महत्त्व को उजागर करता है। निश्चित रूप से, घरेलू वित्तीय स्थितियों के निर्धारण के लिए वैश्विक वित्तीय चक्र पर स्थानीय स्थितियों का भी असर पड़ता है और कुछ संकट तो घरेलू स्थितियों के चलते ही होते हैं। लेकिन कई देशों में संकट का एक महत्त्वपूर्ण सह–संबंध है। इस पर रीनहार्ट और रोजोफ (2009) का शानदार काम है। उसमें दिखाए अनुसार ये एक दूसरे के साथ 'बंच' होने के लिए प्रवृत्त होते हैं। चूंकि अत्यधिक ऋण वृद्धि, वित्तीय संकट की सबसे बड़ी आहटों में से एक है 6, इसलिए वैश्विक वित्तीय चक्रों का संबंध पूँजी प्रवाह में आने वाले उतार–चढ़ावों और आस्ति मूल्यों के घटने–बढ़ने से भी हो सकता है।

iv) नया ट्रिफिन डिलेमा और बहुपक्षीय अंतरराष्ट्रीय मौद्रिक व्यवस्था

गोल्ड स्टैंडर्ड और ब्रेटन वुड्स सिस्टम के आने से स्वर्ण मुद्रा के स्थान पर डॉलर मुद्रा का प्रयोग होने लगा। लगातार बड़ी होती वैश्विक अर्थव्यवस्था में अंतरराष्ट्रीय लिक्विडिटी प्रदाता के रूप में अमेरिका की प्रमुख भूमिका और आरक्षित मुद्रा के एवज में सोने का एक निश्चित भंडार रखने की जरूरत पर सवाल उठे। ट्रिफिन (1961) ने इस ओर संकेत किया कि अंतरराष्ट्रीय भुगतान व्यवस्था सुचारू रूप से काम कर सके, इसके लिए अमेरिका पर्याप्त आरक्षित आस्तियां जारी करे। अमेरिका को आधिकारिक निपटान के अंतर्गत भुगतान संतुलन घाटे की स्थिति से गुजरना पड़ा, क्योंकि इसने अपने स्वर्ण भंडार बढ़ाए बिना विदेशी देयताएं संचित कर लीं। चूंकि डॉलर का मूल्य सोने की तुलना में तय किया गया था, इससे डॉलर में विदेशों का भरोसा गिर गया, जिससे डॉलर के अभाव का सामना भी करना पड़ सकता था। इसके विपरीत, यदि अमेरिका लिक्विड आरक्षित आस्तियों का प्रावधान करता तो डॉलर की कमी हो जाती, जिससे अंतरराष्ट्रीय ट्रांजैक्शन रुक जाते और मूल्य विकृत हो जाते। यह ट्रिफिन ट्रिलेमा है। दिलचस्प है कि वर्तमान स्थिति को इसी रूप में देखा जा सकता है: ऐसी वैश्विक व्यवस्था, जहां यूएस ट्रेजरी और अन्य सुरक्षित डॉलर आस्तियों के रूप में अंतरराष्ट्रीय लिक्विडिटी की आपूर्ति करता है, और लिक्विड आस्तियों में निवेश करता है, और वह भरोसे के जोखिम का सामना करता है। निवेशक डॉलर से अपना पैसा निकाल सकते हैं, इसलिए नहीं कि उन्हें सोने से बराबरी के खत्म होने का डर होगा, बल्कि इसलिए कि अमेरिकी सरकार की राजकोषीय विश्वसनीयता को क्षति पहुंचने से उन्हें डॉलर की विनिमय दर के भारी अवमूल्यन का सामना करना पड़ेगा। दूसरे शब्दों में, विश्लेषण के लिए सोने और डॉलर की समानता जैसे पहलू पर निर्भर रहने की जरूरत नहीं है और हमें नए ट्रिफिन डिलेमा (गौरिन्शास और रे (2007बी) फार्ही एवं अन्य (2011), तथा फार्ही और मैगिअरी (2018) देखें) का सामना करना पड़ सकता है। आसान शब्दों में कहा जाए तो अमेरिका का छोटा–सा सकल लिक्विड विदेशी ऋण, विश्व बैंकर या बीमाकर्ता के रूप में अमेरिका की क्षमता के लिए जोखिम भरा हो सकता है। जैसा कि चार्ट 7 में देखा जा सकता है, विश्व अर्थव्यवस्था में अमेरिका का प्रभुत्व कम होता जा रहा है।

[6] आयशनग्रीन और पोर्टेस (1987), गौरिन्शास और ऑब्सफील्ड (2012), शुलारिक और टेलर (2012).

चार्ट 6 : विश्व जीडीपी में देशों का हिस्सा। स्रोतः गौरिन्शास (2019) और विश्व आर्थिक मंच (2019)।

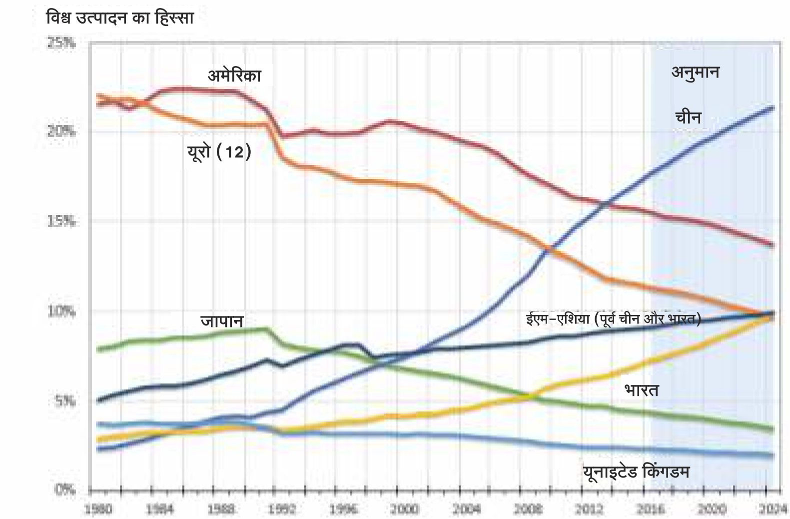

गौरिन्शास एवं अन्य (2018) में बताया गया है कि ऐसे समय में जब विश्व अर्थव्यवस्था में अमेरिका की हिस्सेदारी घट रही है, शेष विश्व द्वारा सुरक्षित आस्तियों की मांग में बढ़ोत्तरी, वास्तविक ब्याज दर में गिरावट में तब्दील हो जाती है। इसलिए अमेरिका के सिकुड़ते प्रभुत्व से वैश्विक वास्तविक दरों में गिरावट आ सकती है। कई संकट मॉडलों में, जब फंडामेंटल ठीक न हों, तो संकट की आशंका होती है, लेकिन जब फंडामेंटल ठीक हों, तो संकट की आशंका नहीं रहती है, जब फंडामेंटल मध्यवर्ती क्षेत्र में हों, स्वतः संकट की आशंका रहती है। समय के साथ अमेरिकी अर्थव्यवस्था के आकार में गिरावट (या अमेरिका की मैक्रो-इकनॉमिक नीतियों में अस्थिरता) अर्थव्यवस्था को गैर-संकट की स्थिति से स्वतः संकट वाली स्थिति में ला खड़ा कर सकती है।

v) चुनौती देने वाली मुद्राएं, निजी या सार्वजनिक, डिजिटल या क्रिप्टो ?

उपर्युक्त विश्लेषण का एक महत्त्वपूर्ण परिणाम यह है कि ऐसा परिवेश जिसमें डॉलर प्रभुत्व वाली अंतरराष्ट्रीय मुद्रा है, किन्तु विश्व अर्थव्यवस्था में अमेरिकी अर्थव्यवस्था के तुलनात्मक रूप से सिकुड़ते आकार के चलते डॉलर भी समय के साथ अस्थिर होता जा रहा है, जबकि शेष विश्व में डॉलर देयताएं लगातार बढ़ रही हैं। तथापि, इसे भुनाने के लिए डॉलर के विकल्प के रूप में किसी एक या अनेक मुद्राओं की जरूरत है। वर्तमान में, डॉलर को चुनौती देने वाला सबसे करीबी विकल्प यूरो हो सकता है। क्योंकि आर्थिक आकार और अंतरराष्ट्रीय व्यापार की दृष्टि से और संस्थागत विकास के

स्तर के मामले में यूरो क्षेत्र की तुलना अमेरिका से की जा सकती है। लेकिन यूरो का इस्तेमाल करने वाले यूरो क्षेत्र के 19 वित्त मंत्रालयों के साथ यूरो का अधूरा आर्किटेक्चर और संपूर्ण यूरो क्षेत्र में सुरक्षित आस्ति की अनुपस्थिति, यूरो के अंतरराष्ट्रीयकरण में बाधा है। यूरो क्षेत्र में पूँजी बाज़ार अब भी अल्पविकसित हैं और अमेरिका के गहन तथा लिक्विड बाज़ारों की तुलना में खंडित हैं (पोर्टेस और री (1998) देखें)। यद्यपि बहुपक्षीय व्यवस्था में परिवर्तन इतना जल्दी नहीं होगा, तथापि स्विफ्ट डेटा के अनुसार, भुगतान की मुद्रा के रूप में यूरो का खूब इस्तेमाल किया जा रहा है और अंतरराष्ट्रीय आरक्षित मुद्रा भंडार के मामले में यह दूसरी सबसे मजबूत मुद्रा है। डॉलर और युआन के बीच की खाई अभी बड़ी है, क्योंकि चीन अब भी पूँजी नियंत्रण के उपाय करता है और उसकी वित्तीय व्यवस्था अल्पविकसित है। लेकिन ट्रेड इन्वॉयसिंग और अंतरराष्ट्रीय वित्तीय ट्रांजैक्शनों के लिए रेन्मिन्बी का इस्तेमाल हाल के समय में बढ़ा है। इसकी कई वजहें हो सकती हैं। चीनी प्राधिकारियों का अतिसक्रिय रवैया, जिन्होंने आरएमबी ट्रेड सेटलमेंट कार्यक्रमों, आरएमबी ऑफशोर क्लियरिंग बैंक और आरएमबी स्वैप ऋणों को बढ़ावा दिया। चीन ने आरएमबी मूल्यवर्ग में तेल का फ्यूचर कॉन्ट्रैक्ट (पेट्रो–युआन) भी शुरू किया और ब्लूमबर्ग ग्लोबल बॉन्ड इंडेक्स में चीनी बॉन्ड भी शामिल किए गए। इसके अतिरिक्त, रेन्ममिन्बी अब अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष के स्पेशल ड्रॉइंग राइट्स का भी हिस्सा है, जो चीन के लिए महत्त्वपूर्ण मौद्रिक शक्ति बनने की दिशा में एक प्रमुख और मोटे तौर पर सांकेतिक रूप से मील का पत्थर है। तमाम सिस्टम्स से सिनर्जी के साथ यदि चीन में पर्याप्त अनुकूल नीतियों को बढ़ावा मिला तो अंतरराष्ट्रीय बाज़ारों में रेन्मिन्बी की स्वीकार्यता स्थापित की जा सकती है। चीन द्वारा कुछ देशों के एक नेटवर्क में अंतरराष्ट्रीय ट्रांजैक्शनों के लिए किसी सक्षम ट्रांजैक्शन टेक्नोलॉजी के साथ ई–आरएमबी जारी करना बाजी पलटने वाला सिक्का साबित हो सकता है।

यद्यपि किसी बहुपक्षीय मुद्रा के लिए यह परिवर्तन बहुत महत्त्वपूर्ण होगा, किन्तु निजी, डिजिटल और क्रिप्टो मुद्राओं के क्षेत्र में काफी नई–नई चीजें सामने आ रही हैं। हम इतना सब एक साथ होते देख रहे हैं, जैसे:I) क्रिप्टो मुद्राओं का उभरना (जैसे बिटकॉइन), जिनमें से कई में विकेंद्रित ब्लॉकचेन का इस्तेमाल किया जा रहा है;III)सार्वजनिक डिजिटल मुद्राएं बनने की संभावना (स्वीडिश ई–क्रोना)। हालांकि ये समय–समय पर सामने आने वाली ''फैशनेबल'' घटनाएं हैं, लेकिन यह वाकई बिल्कुल भी स्पष्ट नहीं है कि बिटकॉइन्स जैसी क्रिप्टो मुद्राएं कौन–सी समस्या का समाधान करने वाली हैं। इनका कोई मूलभूत मूल्य नहीं हैः ये किसी सरकार की राजकोषीय क्षमता में जारी की जाने वाली विधिमान्य मुद्राएं नहीं हैं और न ही ये स्टेबल कॉइन्स हैं, जिनके लिए आरक्षित आस्तियां जमा हैं। इनका केवल एक ही उद्देश्य है, ऐसे ट्रांजैक्शनों को संभव बनाना, जो विनियमों और विधि प्रवर्तन एजेंसियों के राडार से बाहर हों। इनका इस्तेमाल ''डार्क'' ''वेब'' और ''हवाला'' से जुड़ा है। ये मुद्राएं विनिमय का बेहद कमजोर माध्यम हैं, क्योंकि इनका मूल्यन बहुत अस्थिर है और इन्हें आसानी से मैनिपुलेट किया जा सकता है। संक्षिप्त में कहा जाए तो, क्रिप्टो मुद्राएं शुद्ध अटकलबाजी है या ये संदिग्ध ट्रांजैक्शनों का ज़रिया बनती हैं। और इस सबके लिए ''डेटा माइनिंग'' की जरूरत होती है, जिसमें ऊर्जा की भारी खपत होती है। अतः पर्यावरण पर भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। कहना न होगा

कि अंतरराष्ट्रीय मौद्रिक व्यवस्था में इस तरह के किसी भी ऑब्जेक्ट की महत्त्वपूर्ण भूमिका न तो थी और न ही कभी होगी। स्टेबल कॉइन्स (जैसे फेसबुक की लिब्रा, यदि यह कभी अस्तित्व में थी तो) की अलग कहानी है। माना जा रहा है कि इनके मूल्य के पीछे सुरक्षित कोलैटरल हैं और इनकी ट्रांजेक्शन तकनीकी में विकेंद्रीकृत ब्लॉकचेन का इस्तेमाल नहीं किया जाता है, यह केंद्रीकृत नेटवर्क पर बनी है। इसका मौजूदा नेटवर्क पहले से बहुत बड़ा है, तो इसका मतलब है कि स्टेबल कॉइन का इस्तेमाल बहुत तेजी से बढ़ सकता है। आप कल्पना कीजिए ऐसे देश, जहां केंद्रीय बैंक मौद्रिक नीति में नाकाम रहे हैं (उदाहरण के लिए अत्यधिक मुद्रास्फीति वाले देश), वहां स्टेबल कॉइन मूल्यवान साबित हो सकते हैं। जहां तक एक नेटवर्क में इस्तेमाल की जा रही ट्रांजैक्शन तकनीकी का सवाल है तो यह मौजूदा अंतरराष्ट्रीय ट्रांजैक्शन तकनीकों की तुलना में कहीं अधिक उन्नत है। इस प्रकार के स्टेबल कॉइन्स का इस्तेमाल आकर्षक और संभवतः कल्याणकारी साबित हो सकता है। इतिहास गवाह है, निजी मुद्राओं को विकसित होने देना अवांछित ही रहा है। इससे मुद्रास्फीति बढ़ती है और वित्तीय अस्थिरता आती है। इसके अतिरिक्त, किसी भी निजी कंपनी का प्राथमिक उद्देश्य लाभ कमाना होता है, अतः स्टेबल कॉइन जैसी मुद्रा का उपयोग उस कंपनी द्वारा उपयोक्ताओं का अधिकतम डेटा हासिल करने, ग्राहकों को लॉक–इन करने, भविष्य में किसी प्रकार की बैंकिंग गतिविधियां करने और अपना कोष भरने के लिए किए जाने की आशंका बनी रहेगी। इसमें और भी समस्याएं हैं। बैंकों का ऋणदाता (केंद्रीय बैंक) कौन होगा, अगर ग्राहक चूककर्ता हो जाएं तो क्या होगा। एकाधिकार की शक्ति का दुरुपयोग होने लगे तो क्या होगा। ये सब बड़े मसले हैं। ये सब सरकारी प्राधिकारियों के लिए चिंता के विषय हैं और इसके लिए बेहद सावधानीपूर्ण विनिमय अपेक्षित है। यह समझना जरूरी है कि बहुत सक्षम अंतरराष्ट्रीय ट्रांजैक्शन तकनीकों को अपनाने के लिए सिद्धांततः नई मुद्रा बनाना अपेक्षित नहीं है। अब गेंद केंद्रीय बैंकों के पाले में हैं और बीआईएस को पूरे तालमेल के साथ वर्तमान राष्ट्रीय–अंतरराष्ट्रीय मुद्राओं का इस्तेमाल करते हुए अंतरराष्ट्रीय ट्रांजैक्शन तकनीक में सुधार लाना होगा। निःसंदेह, जब कोई राष्ट्र राज्य कोई मुद्रा जारी करता है तो उसमें जरूरी सार्वजनिक वस्तुओं की आपूर्ति का जिम्मा सरकार पर होता है। सरकार मैक्रो–इकनॉमिक स्थिरता, वित्तीय स्थिरता और राजकोष से कुछ सार्वजनिक व्यय संबंधी नीतियां बनाती हैं। मैं दोबारा इस बात पर जोर देकर कह रही हूं कि यह उन बहुराष्ट्रीय निजी कंपनियों के उद्देश्य से बहुत अलग है, जो स्टेबल कॉइन जैसी कोई निजी मुद्रा या किसी और रूप में निजी मुद्रा लाने का विचार कर रही हैं। इन सब कारणों से सरकारी प्राधिकारियों के लिए यह विवेकपूर्ण फैसला नहीं होगा कि वे ऐसी कोई नीति अपनाएं, जिससे अपने ही राष्ट्र की मुद्रा जारी करने के लिए उनका ही एकाधिकार खतरे में पड़ जाए।

यदि कोई केंद्रीय बैंक कोई जारी डिजिटल मुद्रा जारी करता है तो यह अलग बात है। उस स्थिति में राजकोषीय आधार का कोई मसला ही नहीं है। फिर भी कुछ दिलचस्प सवाल जरूर उभरते हैं। इनमें सबसे बड़ा सवाल साइबर सुरक्षा का है। ऐसा देश जो केवल ई–मुद्रा पर ही निर्भर हो, उस पर हैकरों का खतरा बढ़ जाता है। यदि लोग अपनी ई–मुद्रा, सीधे केंद्रीय बैंक में जमा कराते हैं तो वाणिज्यिक बैंकिंग व्यवस्था की स्थिरता से जुड़े कुछ सवाल भी उभर सकते हैं। वाणिज्यिक बैंकों पर

खतरा मंडरा सकता है।

जैसा कि मैंने पहले भी कहा है, बहुत मुमकिन है कि यूरोपीय संघ या चीन जैसी प्रमुख व्यापारिक शक्तियां अंतरराष्ट्रीय ट्रांजैक्शनों के लिए अधिक सक्षम तकनीकी अपना सकती हैं। यूरो क्षेत्र में मौजूदा भुगतान सिस्टम टिप्स (टीआईपीएस) बेहतरीन है, लेकिन यह उस क्षेत्र से बाहर ट्रांजैक्शन के लिए नहीं है। ऐसे में ई–यूरो या ई–आरएमबी पर निर्भरता से अंतरराष्ट्रीय मौद्रिक व्यवस्था में परिवर्तन आ सकते हैं। मार्क कार्नें ने 2019 में अपने जैक्सन होल व्याख्यान में सिंथेटिक हेजेमॉनिक करंसी (एसएचसी) बनाने का प्रस्ताव रखा था, जो अनिवार्य रूप से डिजिटल एसडीआर (मुद्रा वर्ग) होगी। हालांकि एसडीआर संकट के समय कभी भी मूल्य मापक ईकाई (यूनिट ऑफ अकाउंट) से विनिमय के माध्यम (मीडियम ऑफ एक्सचेंज) के रूप में विकसित नहीं हुई। बैंकों के ऋणदाता (केंद्रीय बैंक) को उन राष्ट्रीय केंद्रीय बैंकों का कंसोर्शियम बनाना पड़ेगा, जिनकी मुद्राएं एसडीआर वर्ग में हैं, लेकिन ऐसे किसी कंसोर्शियम के लिए कोई राजकोषीय आधार नहीं है। वस्तुतः, वैश्विक वित्तीय संकट के समय स्वैप ऋण प्रदान करने वाला केंद्रीय बैंक यूएस फेडरल रिज़र्व रहा है। वर्ष 2008 में, यूएस फेडरल रिजर्व ने केंद्रीय बैंकों के नेटवर्क को सैकड़ों अरब डॉलर प्रदान किए थे।

निष्कर्ष

विश्व अर्थव्यवस्था की तुलना में सिकुड़ती अमेरिका की अर्थव्यवस्था के आकार के चलते वर्तमान अंतरराष्ट्रीय मौद्रिक व्यवस्था में अस्थिरता आ सकती है। इसलिए हमें अंतरराष्ट्रीय मौद्रिक ऑर्डर में संभावित परिवर्तनों के बारे में सोचने की जरूरत है। अब मुझे यह समीचीन लगता है कि एक नेटवर्क के भीतर हाईटेक अंतरराष्ट्रीय भुगतान और निपटान सिस्टम विकसित करने के लिए दुनिया मुख्य केंद्रीय बैंकों की प्रतिस्पर्धा की ओर जा सकती है, जिसे वे विस्तार देना चाहेंगे। ऐसे डिजिटल नेटवर्कों में लॉक–इन प्रभाव काफी मजबूत हो सकता है। वस्तुतः सभी ट्रांजैक्शनों का डेटा उस सिस्टम के स्वामित्व वाली संस्था द्वारा जुटाया जाएगा, जो बाद में अपना प्रभुत्व स्थापित करने के लिए उसका इस्तेमाल कर सकती है। वर्तमान मौद्रिक व्यवस्था में, अंतरराष्ट्रीय मुद्रा के इस्तेमाल में धीमापन बाज़ारों की लिक्विडिटी के चलते नेटवर्क के बाहरी होने और अंतरराष्ट्रीय मुद्रा की उसकी पूरक भूमिका (केंद्रीय बैंक आरक्षित मुद्रा में, नॉमिनल एंकर आदि के रूप में) की वजह से आती है। लेकिन वर्तमान मौद्रिक व्यवस्था न तो सूचना का सटीक केंद्रीकरण करती है और न ही इसमें दंड के प्रवर्तन की व्यवस्था है। लेकिन डिजिटल नेटवर्क में यह संभव है। और सटीक शब्दों में कहूं तो आने वाले समय में हमें ''एन्ट फायनैंशल'' के स्वामित्व वाली चीनी कंपनी ''एलिपे'' जैसे विशालकाय सिस्टम देखने को मिल सकते हैं, जो सरकारी स्वामित्व वाले हों। इससे यह सुनिश्चित होगा कि उस नेटवर्क में इस्तेमाल हुआ धन भुगतान और ऋण का प्रभुत्व वाला माध्यम बन जाएगा और इसे जारी करने वाला देश महत्त्वपूर्ण भू–राजनीतिक भूमिका में होगा। वहां से उस नेटवर्क में देशों की संख्या बढ़ाना नया नियंत्रक सिद्धांत हो सकता है। यह ऐसी संभावना है जिस पर निश्चित रूप से ध्यान देने और भविष्य के बारे में सोचने की जरूरत है, क्योंकि इसके भू–राजनीतिक परिणाम गंभीर हो सकते हैं।

References:

- Acharya, Viral V. and Raghuram G. Rajan (2013) Sovereign Debt, Government Myopia and the Financial Sector, Review of Financial Studies, 26(6), 1526-1560.
- Bruno, Valentina and Hyun Song Shin (2015) “Capital Flows and the Risk-taking channel of monetary policy”, Journal of Monetary Economics, 71, 119-132.
- Calvo, Guillermo A., Leonardo Leiderman, and Carmen M. Reinhart (1996). Inflows of Capital to Developing Countries in the 1990s, Journal of Economic Perspectives, vol.10, No. 2, pages 123-139.
- Carney, Marc (2019). The Growing Challenges for Monetary Policy in the current International Monetary and Financial System, Speech, Jackson Hole Economic Symposium.

- Davis, Scott, Giorgio Valente and Eric Van Wincoop (2019). Global Capital Flows Cycle: Impact on Gross and Net Flows. NBER Working Paper No. 25721.
- Despres, E., C.P. Kindleberger, and W.S. Salant (1966). The Dollar and World Liquidity: A Minority View. Brookings Institution.
- Eichengreen, Barry and Richard Portes (1987), 'The Anatomy of Financial Crises', in Richard Portes and Alexander Swoboda, eds., Threats to International Financial Stability, Cambridge University Press.
- Farhi, Emmanuel, Pierre-Olivier Gourinchas, and Hélène Rey (2011). Reforming the International Monetary System. Centre for Economic Policy Research, 76.
- Farhi Emmanuel and Matteo Maggiori (2018) A Model of the International Monetary System. Quarterly Journal of Economics, 133, no. 1 : 295-355.
- Forbes, Kristin J. and Francis E. Warnock (2012) "Capital Flow Waves: Surges, Stops, Flight and Retrenchment" Journal of International Economics 88(2): 235-251.
- Gerko, Elena and Hélène Rey (2017) Monetary policy in the Capitals of Capital, Journal of the European Economic Association 2017, Volume 15, Issue 4, 1 August, Pages 721–745
- Gopinath, Gita (2016). The International Price System. Jackson Hole Symposium Proceedings.
- Gourinchas, Pierre-Olivier and Maurice Obstfeld (2012) "Stories of the Twentieth Century for the Twenty-First," American Economic Journal: Macroeconomics, 4(1), 226-65.
- Gourinchas, Pierre-Olivier, and Hélène Rey (2007a). International Financial Adjustment. Journal of Political Economy, University of Chicago Press, vol. 115(4), pages 665-703, August.
- Gourinchas, Pierre-Olivier, and Hélène Rey (2007b). From world banker to world

venture capitalist: US external adjustment and the exorbitant privilege. G7 current account imbalances: sustainability and adjustment, University of Chicago Press, pages 11-66.

- Gourinchas, Pierre-Olivier, Hélène Rey and Nicolas Govillot (2018) Exorbitant Privilege and Exorbitant Duty, mimeo LBS
- Gourinchas, Pierre-Olivier, Hélène Rey and Maxime Sauzet (2019), The International Monetary and Financial System. Annual Review of Economics.
- Gourinchas, Pierre Olivier, (2019) The Dollar Hegemon? Evidence and Implications for Policy Makers, mimeo Berkeley.
- Ilzetzki, Ethan, Reinhart, Carmen and Rogoff, Kenneth (2017). Exchange Arrangements Entering the 21st Century: Which Anchor Will Hold? NBER Working Papers, No 23134.
- Kenen, Peter B. (1983) The Role of the Dollar as an International Currency. Occasional Paper 13, Group of Thirty, New York.
- Kindleberger, Charles P. (1981). International money. London: George Allen & Unwin.
- Lane, Philip R., and Gian Maria Milesi-Ferretti (2018). The External Wealth of Nations Revisited: International Financial Integration in the Aftermath of the Global Financial Crisis. IMF Economic Review, Palgrave Macmillan; International Monetary Fund, vol. 66(1), pages 189-222, March.
- Maggiori, Matteo, Brent Neiman, and Jesse Schreger (2018). International Currencies and Capital Allocation. Working Paper, Harvard.
- Miranda-Agrippino, Silvia, and Hélène Rey (2015). US Monetary Policy and the Global Financial Cycle. NBER Working Paper No. 21722.
- Miranda-Agrippino, Silvia, Tsveti Nenova and Hélène Rey (2019). Global Footprints of Monetary Policies, in progress.

- Passari Evgenia and Hélène Rey (2015) Financial Flows and the International Monetary System, The Economic Journal 125 (584)
- Obstfeld, Maurice (2011). International Liquidity: The Fiscal Dimension. NBER Working Papers, 17379.
- Obstfeld, M. and A. Taylor (2017). "International monetary relations: Taking finance seriously". Journal of Economic Perspectives.
- Portes Richard and Hélène Rey (1998). "The Emergence of the Euro as an International Currency", Economic Policy 26, April 1998, 305-343.
- Reinhart Carmen and Ken Rogoff (2009). This Time is Different: Eight Centuries of Financial Folly. Princeton University Press.
- Rey, Hélène (2013). Dilemma not Trilemma: The Global Financial Cycle and Monetary Policy Independence. Federal Reserve Bank of Kansas City Economic Policy Symposium.
- Rey, Hélène (2016). International Channels of Transmission of Monetary Policy and the Mundellian Trilemma. IMF Economic Review, 2016, 64:6.
- Schularick, Moritz and Alan M. Taylor (2012) "Credit Booms Gone Bust: Monetary Policy, Leverage Cycles, and Financial Crises, 1870-2008." American Economic Review 102, pages 1029-61.
- Triffin, Robert (1961). Gold and the Dollar Crisis: The future of convertibility. Yale University Press, New Haven, Connecticut.

वक्ता के बारे में

प्रो. हेलेन रे

प्रोफेसर–अर्थशास्त्र,
लंदन बिज़नेस स्कूल

हेलेन रे लंदन बिज़नेस स्कूल में अर्थशास्त्र की लॉर्ड बागरी प्रोफेसर हैं। 2007 तक वह प्रिंसटन विश्वविद्यालय के अर्थशास्त्र विभाग और वुडरो विल्सन स्कूल में अर्थशास्त्र और अंतरराष्ट्रीय मामलों की प्रोफेसर रहीं। उनका शोध कार्य विदेश व्यापार और वित्तीय असंतुलनों के निर्धारक तत्त्वों और उनके परिणामों, वित्तीय संकटों के सिद्धांत और अनुभवजन्य सिद्धांतों और अंतरराष्ट्रीय मौद्रिक व्यवस्था से जुड़ा रहा है। उन्होंने विशेष रूप से इस पर काम किया है कि किस तरह देशों की सकल विदेशी आस्ति स्थिति, चालू खाता समायोजनों और विनिमय दर का अनुमान लगाने में मददगार होती है। उन्होंने वैश्विक वित्तीय चक्रों की अवधारणा दी और मंडेलिअन ट्रिलेमा के विचार पर काम किया। उन्हें एल्फ्रेड पी. स्लोन रिसर्च फेलोशिप मिली। साथ ही 2006 में उन्हें बर्नेसर पुरस्कार और अर्थशास्त्र में यूरोप की किसी महिला अर्थशास्त्री के महती योगदान के लिए उन्हें यूरोपीय आर्थिक संघ के 2012 के पहले बर्गित ग्रोडल अवॉर्ड से सम्मानित किया गया। 2013 में उन्हें थॉमस पिकेटी के साथ ऐयो यान्सन अवॉर्ड, 2014 में पहला कार्ल मेंजेर प्री, 2015 में प्री एडुआर्ड बॉनेफेस और 2017 में मौरिस एलिस प्राइज़ से सम्मानित किया गया। प्रोफेसर रे हाई काउंसिल फॉर फायनैंशल स्टैबिलिटी (फ्रेंच मैक्रो प्रूडेंशियल अथॉरिटी) और अंतरराष्ट्रीय अर्थव्यवस्था संबंधी बेलाजियो ग्रुप की सदस्य हैं। वह 2012 तक इकनॉमिक एनालिसिस काउंसिल की सदस्य रहीं, प्रूडेंशियल कन्ट्रोल एंड रिज़ोल्यूशन अथॉरिटी के बोर्ड में (2010–2014) रहीं। वह फ्रेंच अखबार द ईकोज़ में नियमित स्तंभकार हैं। हेलेन रे ने अपनी स्नातक डिग्री ईएनएसएई–ए से पूरी की। वह स्टैनफॉर्ड विश्वविद्यालय से इंजीनियरिंग इकनॉमिक्स सिस्टम्स में मास्टर हैं और लंदन स्कूल ऑफ इकनॉमिक्स और स्कूल ऑफ एडवांस्ड स्टडीज इन सोशल साइंसेज़ से उन्होंने पीएचडी की है।

एक्ज़िम बैंक
EXIM BANK

केंद्र एक भवन, 21वीं मंज़िल, विश्व व्यापार केन्द्र संकुल,
कफ़ परेड, मुंबई 400 005.
फोनः (+9122) 22172600 फैक्सः (+9122) 22182572